International Journal of Advanced Educational Research
ISSN: 2455-6157
Impact Factor: RJIF 5.12
www.educationjournal.org
Volume 3; Issue 2; March 2018; Page No. 91-93

नालन्दा एक शिक्षा केन्द्र के रूप में : एक तुलनात्मक अध्ययन

रोहित कुमार गुप्ता
शोध छात्र, प्राचीन इतिहास, सस्कृति एवं पुरातत्व विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद, उत्तर प्रदेश, भारत।

प्रस्तावना

विक्रमशिला, उदन्तपुरी एवं बलभी विश्वविद्यालय जो नालन्दा के समकालीन शिक्षा केंद्र थे जिनमें नालन्दा विश्वविद्यालय का अद्वितीय स्थान रहा है। इस विश्वविद्यालय की स्थापना गुप्त सम्राट चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य के पुत्र कुमार गुप्त प्रथम महेंद्रादित्य ने की थी।[1] ह्वेनसांग के अनुसार कुमारगुप्त (शक्रादित्य) ने यहां विश्वविद्यालय की स्थापना एक ज्योतिषी के परामर्श से किया था, जिसने शक्रादित्य को बताया था कि नालंदा में स्थापित विद्या का केंद्र एक हजार वर्षों तक स्थाई रहेगा।[2] हम कह सकते हैं कि ज्योतिषी के द्वारा बताई गई बातें बिल्कुल सत्य हुई। एक लंबे समय तक समकालीन विश्वविद्यालयों में नालंदा का वर्चस्व रहा। जिसके तेजस्व में अन्य विश्वविद्यालय ओझल हो गये। कुमारगुप्त के बाद बुद्धगुप्त, तथागत गुप्त, नरसिंहगुप्त बालदित्य आदि अनेक गुप्त राजाओं ने इसे अपना संरक्षण प्रदान कर इसके विकास में योगदान दिया था। लेकिन हर्षवर्द्धन के पश्चात उत्तर भारत में राजनैतिक अस्थिरता का वातावरण व्याप्त हो गया। इस दौरान नालंदा विश्वविद्यालय को किसी राज्य का संरक्षण नहीं मिला, परंतु इत्सिंग के विवरण से ज्ञात होता है कि पूर्व के शासकों द्वारा दिये गये दानों के फलस्वरूप नालंदा विश्वविद्यालय आर्थिक दृष्टि से समृद्ध था।[3] इसी समय सोमपुरी तथा विक्रमशिला विश्वविद्यालयों की स्थापना होने के कारण नालंदा की उन्नति में कुछ बाधा पहुंची। लेकिन उसके चर्मोत्कर्ष को नहीं रूक सकी। पाल काल में नालंदा को सर्वाधिक संरक्षण देवपाल ने दिया। देवपाल ने नालंदा की देखभाल हेतु वीरदेव नामक एक ब्राह्मण की नियुक्ति भी की थी जो कालांतर में नालंदा भिक्षुसंघ का प्रमुख बना था।[4] देवपाल के पश्चात पाल शासक गोपाल द्वितीय, महिपाल प्रथम, विग्रहपाल, रामपाल तथा गोविंदपाल ने भी नालंदा को संरक्षण प्रदान किया। पाल शासकों के बाद सेन शासकों ने भी यथा संभव नालंदा विश्वविद्यालय की सेवा की।[5] नालंदा न केवल शिक्षा केंद्र के रूप में ख्याति अर्जित की बल्कि भवन निर्माण में स्थापत्य कला की सारी तकनीकियों का प्रयोग हुआ था जिससे नालंदा स्थापत्य कला के एक सुंदर उदाहरण के रूप में विख्यात हो गया।[6]

नालंदा विश्वविद्यालय के विषय में चीनी यात्रियों ने विशेष रूप से विस्तारपूर्वक लिखा है। इस शिक्षा संस्था में प्रवेश पाने के इच्छुक विद्यार्थियों के लिए कठोर नियम थे। ऐसे प्रवेशच्छुक विद्यार्थी को सबसे पहले द्वारपाल से वाद–विवाद करना पड़ता था तथा उसकी शंकाओं का समाधान करना आवश्यक था। उसके प्रश्नों से 8–10 विद्यार्थी असफल भी हो जाया करते थे और एक दो सफल।[7] वर्तमान समय में भी विश्वविद्यालय में प्रवेश के लिए आयु–सीमा का निर्धारण है यह नियम नालंदा में भी लागू था इसकी पुष्टि इत्सिंग के विवरण से होती है कि नालंदा विश्वविद्यालय में प्रवेश के दौरान सामान्य विद्यार्थी की आयु सीमा 20 वर्ष तथा बौद्ध संघ में प्रविष्ट भिक्षुओं की आयु–सीमा 13 से 15 वर्ष निर्धारित की गयी थी।[8] विद्यार्थी की एक बार प्रवेश होने के उपरांत उसे उच्च योग्यता का परिचायक मान लिया जाता था।

नालंदा विश्वविद्यालय में पाठ्य–विषयों का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक था। महायान सम्प्रदाय का प्रमुख केन्द्र होते हुए भी यहां हीनयान ब्राह्मण ग्रंथों की भी उच्च शिक्षा दी जाती थी।[9] इत्सिंग के विवरण से ज्ञात होता है कि नालंदा में दो स्तरों पर शिक्षा दी जाती थी। प्राथमिक शिक्षा तथा उच्च शिक्षा। प्राथमिक शिक्षा के अंतर्गत सर्वप्रथम व्याकरण की शिक्षा दी जाती थी जबकि उच्च शिक्षा के अंतर्गत विद्वान अध्यापकों द्वारा शास्त्रार्थ विधि से ज्ञान अर्जन करता था।[10] इस शिक्षा संस्था में योगशास्त्र व आयुर्वेद का अध्ययन सभी विद्यार्थियों के लिए आवश्यक था। नालंदा के तत्कालीन कुलपति शीलभद्र योगशास्त्र के प्रकाण्ड विद्वान थे।[11] वर्तमान सरकार भी योग शिक्षा पर विशेष महत्व दे रही है। जिसको प्रोत्साहित करने के लिए नये–नये योजनाएं व कार्यक्रमों की शुरूआत कि जा रही है जो योगशास्त्र के महत्व की पुष्टि करता है। ह्वेनसांग के अनुसार नालंदा में 5 विद्याए पढ़ायी जाती थी–शब्द विद्या, चिकित्सा विद्या, हेतु विद्या, शिल्प स्थान विद्या और अध्यात्म विद्या। इसके अतिरिक्त वाद–विवाद के द्वारा भी ज्ञान का प्रतिस्पर्शी विकास किया जाता था। वस्तुतः नालंदा समस्त प्राचीन भारत के विद्या के अध्ययन का महत्वपूर्ण केंद्र था। शिक्षा पद्धति प्राचीन काल के गुरूकुल जैसी थी।[12] यहां तीन तरह से विद्यार्थियों को शिक्षा दी जाती थी। प्रथम पद्धति के अंतर्गत विद्यार्थियों के लिए मौखिक शिक्षा की व्यवस्था थी। द्वितीय पद्धति के अंतर्गत व्याख्यान विधि को सम्मिलित किया गया था। शिक्षा की तृतीय पद्धति शास्त्रार्थ विधि थी। वर्तमान समय के विश्वविद्यालयों में छात्रों के रहने के लिए छात्रावास बनाये गये हैं। ठीक उसी प्रकार नालंदा विश्वविद्यालय में छात्रों के लिए छात्रवास विहार के रूप में बनाये गये थे। इसी लिए नालंदा विश्वविद्यालय तत्कालीन विश्व का सबसे बत्रडा आवासीय विश्वविद्यालय था। यहां कि शासन व्यवस्था भी उच्च कोटि की थी जो संघ के नियमों पर आधारित थी। ह्वेनसांग लिखता है कि जिस तरह से यहां के नियम कठोर हैं, उसी तरह से यहां के भिक्षु उसका पालन करने हेतु तत्पर भी रहते है।[13] आवास के साथ–साथ छात्रों के भोजन तथा वस्त्र की व्यवस्था भी विश्वविद्यालय को ही करनी पड़ती थी तथा इसका विद्यार्थियों से कोई शुल्क नहीं लिया जाता था।[14] यह खर्च नालंदा को दान में मिले गाँवों की आमदनी एवं समय–समय पर संपन्न श्रद्धालुओं द्वारा प्रदत्त आर्थिक सहयोग से चलता था।[15] इत्सिंग के विवरण से ज्ञात होता है कि नालंदा के विद्यार्थी एवं आचार्य दोनों को एक ही प्रकार का भोजन दिया जाता था। विश्वविद्यालय आर्थिक दृष्टि से संपन्न था। ग्रामों की आय से विश्वविद्यालय का प्रबंध सुदृढ था। प्रबंध का मुख्य उत्तरदायित्व कुलपति या अध्यक्ष के ऊपर था जिसका चुनाव समस्त भिक्षुओं द्वारा होता था। अपने अनुभव एवं विद्वता से सम्मानित भिक्षु ही इस पद के योग्य समझे जाते थे। विद्यार्थी के अध्ययन के लिए यहां धर्मयज्ञ

नाम विशालकाय पुस्तकालय था। इत्सिंग ने स्वयं 400 संस्कृत पुस्तकों की प्रतिलिपियां तैयार की थी, जिनमें लगभग 3 लाख श्लोक थे। रत्नसागर, रत्नोदधि, और रत्नरंजक नामक तीन भवनों से मिलकर भव्य पुस्तकालय का निर्माण हुआ था, जिनमें जिज्ञासु और अध्ययनशील विद्यार्थियों की प्रायः भीड़ रहा करती थी। अंधकार के छाये को प्रकाश द्वारा ही आलोकित किया जा सकता है ठीक उसी प्रकार शिक्षा केंद्र को शिक्षकों के द्वारा ही आलोकित किया जा सकता है। शिक्षक के बिना विश्वविद्यालय की भव्य इमारते भी खंडहर सी प्रतीत होती है। सरहपाद, नागार्जुन, आर्यदेव, धर्मपाल, चंद्रपाल, गुणमति, स्थिरमति, प्रभागिम, जिनषमत्र, दिङ्नाग, ज्ञानचंद्र इत्यादि आचार्यो के द्वारा नालंदा विश्वविद्यालय विश्व प्रसिद्ध हुआ। जिनके आकर्षण से दूरस्थ विद्यार्थी भी ज्ञानार्जन के निमित्त आते थे और अपने को सुबुद्ध और सुरक्षित बनाने की चेष्टा करते थे। अश्वघोष, नागार्जुन, आर्यदेव तथा कुमारलब्ध इन चार उत्तरकालीन बौद्ध धर्म के आचार्यो को ह्वेनसांग ने संसार को आलोकित करने वाले चार सूर्य की संज्ञा से विभूषित किया है।[16] नालंदा की ख्याति इतनी थी कि केवल भारतवर्ष से ही नहीं बल्कि तिब्बत, चीन, जापान, थाईलैंड, इंडोनेशिया, कोरिया, मंगोलिया, तुषार, जावा, सुमात्रा, स्याम, मलाया, वर्मा, लंका आदि देशों के विद्यार्थी भी बत्रडी संख्या में अध्ययन हेतु आते थे। जिनमें ह्वेनसांग, इत्सिंग, यू–जी–ह्वेनच्यू, हुवाईनेह, आर्यवर्ग, फो–ताउ–ता–माऊ आदि का नाम महत्वपूर्ण है।

कालांतर में नालंदा की अवनति होने लगी, संभवतः विहारों का निर्माण न हो सकना ही अवनति का प्रमुख कारण था। बख्तियार खिलजी ने नालंदा के भवनों को ध्वस्त कर दिया। वर्तमान में नालंदा के अवशेष ही अपने यश–कीर्ति का बखान करते हैं।

नालंदा विश्वविद्यालय के लगभग 800 वर्षो के लंबे जीवन काल में देश के अन्य भागों में कई शिक्षा केंद्रों की स्थापना हुई, जिनमें सर्वाधिक महत्वपूर्ण तथा नालंदा की ही तरह महायान संप्रदाय का केंद्र, विक्रमशिला विश्वविद्यालय था। इसका संस्थापक पाल शासक धर्मपाल था। नालंदा तथा विक्रमशिला विश्वविद्यालय के कुछ नियमों में काफी समानता थी। वहाँ भी नालंदा की ही तरह प्रवेश परीक्षा ली जाती थी। विक्रमशिला विश्वविद्यालय एक चहारदीवारी से घिरा था जिसमें चार द्वार थे। प्रत्येक द्वारा पर द्वारपाल होता था, जो प्रवेश हेतु इच्छुक विद्यार्थियों से प्रश्न पूछता था। संतुष्ट होने पर ही उन्हें प्रवेश करने की अनुमति दी जाती थी। इसके विकास हेतु भी शासकों ने काफी योगदान दिया। यहां महायान संप्रदाय के चार प्रमुख अंगों की शिक्षा दी जाती थी, जिसके लिए 108 आचार्यो की नियुक्ति की गयी थी।[17] नालंदा की ख्याति 10वीं शताब्दी में विक्रमशिला से कम हो गयी थी तथा विक्रमशिला का कुलपति ही नालंदा की भी देखभाल करता था।[18] दीपंकर श्रीज्ञान अतिश, रत्नकीर्ति तथा शाक्य श्री भद्र विक्रमशिला विश्वविद्यालय के प्रमुख आचार्य थे।[19] अध्ययन की समाप्ति के बाद सम्राट द्वारा यहां के विद्यार्थियों को 'पंडित' तथा आचार्यो को 'विश्वविद्यालय का स्तंभ' उपाधि से सम्मानित किया जाता था।[20] 12वीं शताब्दी के अंत तक इस विश्वविद्यालय का भी अंत हो गया था। इसके पतन के बारे में कोई विशेष जानकारी नहीं मिल पायी है।

विहार शरीफ के पास उदन्तपुरी विश्वविद्यालय की स्थापना प्रथम पाल शासक गोपाल ने की थी।[21] इस विश्वविद्यालय में भी अनेक विद्वान रहते थे। अरब लेखकों ने इसे 'अखन्द' नाम से संबोधित किया है। 1199 ई. में मुसलमान आक्रमणकारी मुहम्मद–बिन–बख्तियार खिलजी ने इसका विनाश कर दिया। उसने यहां के बौद्ध भिक्षुओं को मौत के घाट उतार दिया तथा वहां के दुर्लभ ग्रंथ संपदा को जलाकर भस्म कर दिया। इस विश्वविद्यालय के संबंध में कोई विशेष जानकारी उपलब्ध नहीं हो पायी है। पाल शासक रामपाल ने 11वीं शताब्दी में जगद्दल विश्वविद्यालय की स्थापना की थी जो गंगा तथा तोया नदियों के संगम पर स्थित था। दुर्भाग्य से इस विश्वविद्यालय की खोज अभी नहीं हो सकी है। संभवतः यह बंगाल के वारेंद्र नामक प्रदेश में कहीं पर स्थित था। इस विश्वविद्यालय में तंत्र के सर्वाधिक विकृत रूप की शिक्षा दी जाती थी।[22]

इन विश्वविद्यालयों के अतिरिक्त सुदूर पश्चिम में बलभी विश्वविद्यालय सर्वाधिक महत्वपूर्ण था। सातवीं शताब्दी ई. में ध्रुव प्रथम की भांजी दुद्दा ने इस विश्वविद्यालय की स्थापना की थी।[23] चीनी यात्री ह्वेनसांग तथा इत्सिंग दोनों ने इस विश्वविद्यालय का विवरण दिया है। बलभी विश्वविद्यालय हीनयान संप्रदाय की शिक्षा का महत्वपूर्ण केंद्र था। स्थिरमति और गुणमति यहीं के रहने वाले थे तथा स्थिरमति ने यहां पर एक विहार का निर्माण भी करवाया था।[24] बाद में दोनों आचार्य नालंदा चले आए। नालंदा विश्वविद्यालय में प्रवेश हेतु बलभी के विद्यार्थियों को वरीयता दी जाती थी। ह्वेनसांग के विवरण से ज्ञात होता है कि वलभी हीनयान का केंद्र था तथा नालंदा विश्वविद्यालय से उसकी प्रतिद्वन्द्विता चलती थी। नालंदा विश्वविद्यालय उसे पराजित करने तथा उसका विध्वंस करने हेतु तत्पर रहता था। इत्सिंग ने नालंदा तथा बलभी विश्वविद्यालयों की तुलना तत्कालीन चीनी शिक्षा केंद्रों 'चिमा–शिह–चू', 'चिंग–ली' तथा 'लुंग–मेन' से की है। बलभी विश्वविद्यालय के पुरावशेष गुजरात के भावनगर जिले के बल्लभ नामक स्थान से प्राप्त हुए हैं। उसका व्यापक पैमाने पर उत्खनन कार्य भी हुआ है, परंतु वहां से एक भी बुद्धमूर्ति नहीं मिली है जिससे यह पता चलता है कि बलभी विश्वविद्यालय हीनयान का प्रमुख केंद्र था। तत्कालीन सभी विश्वविद्यालयों का संबंध किसी न किसी रूप से नालंदा विश्वविद्यालय से रहा है।

उपर्युक्त समस्त विश्वविद्यालयों में से किसी की भी तुलना नालंदा से नहीं की जा सकती। एक समय ऐसा आता है जब हम देखते हैं कि विक्रमशिला की चमक नालंदा से भी बढ़ जाती है, परंतु नालंदा के उत्कर्ष काल के आगे विक्रमशिला कहीं नहीं ठहरता। नालंदा के आचार्यो वसुबंधु, दिङ्नाग, शीलभद्र, धर्मकीर्ति, शांतिरक्षित आदि ने विश्वविद्यालय को जो सम्मान दिलाया तथा इसकी ख्याति विदेशों में फैलाई, वैसा विक्रमशिला के साथ कभी नहीं हुआ। हालांकि विक्रमशिला के कुछ विद्वानों तथा उसके कुछ नियमों, पाठ्यक्रमों, प्रवेश–परीक्षा, भव्य भवनों एवं स्तूपों को ध्यान में रखते हुए नालंदा से इसकी समानता की जा सकती है, लेकिन यह भी ध्यान देने योग्य है कि जब नालंदा विश्वविद्यालय पतन की ओर अग्रसर था, तब विक्रमशिला विश्वविद्यालय की स्थापना हुई। यही कारण था कि विक्रमशिला विश्वविद्यालय थोड़े समय के लिए नालंदा विश्वविद्यालय से भी अधिक प्रसिद्ध हो गया था।

संदर्भ

1. त्रिपाठी, हवलदार, बौद्ध धर्म और बिहार, पटना, 1960 पृष्ठ–193
2. वही–पृष्ठ–194
3. श्रीवास्तव, ए.पी., नालंदा की स्थापत्य एवं मूर्तिकला, नई दिल्ली, 1994, पृष्ठ–14
4. संकालिया, एच.डी., दी नालंदा यूनिवर्सिटी, दिल्ली, 1972, पृष्ठ–68
5. श्रीवास्तव, ए.पी. वही, पृष्ठ–16
6. ह्वेनसांग, बुद्धिस्ट रेकार्ड्स ऑफ दी वेस्टर्न, वर्ल्ड, अनु. एस. बील, पृष्ठ–168–170

7. वाटर्स, थामस, आन युवान च्वान्स ट्रवेल्स इन इंडिया, पृष्ठ –165, मिश्रा, बी.एन., नालंदा भाग–1, पृष्ठ –240
8. इत्सिंग, ए रेकार्ड ऑफ दी बुद्धिस्ट रेलिजन, अनु. जे. तकाकुशु, पृष्ठ–175, मिश्रा, बी.एन., नालंदा वालूम–1, 1988 पृष्ठ–241
9. शास्त्री, चतुरसेन, बुद्ध और बौद्ध धर्म, दिल्ली, 1940 पृष्ठ–299
10. मुकर्जी, आर.के., ऐन्शियन्ट इंडिया एजुकेशन, दिल्ली, 1974, पृष्ठ–562
11. शास्त्री, चतुरसेन, वही
12. वही, पृष्ठ –300
13. त्रिपाठी, हवलदार, वही, पृष्ठ–199
14. श्रीवास्तव, ए.पी.,वही, पृष्ठ–25
15. पंत, आर, नालंदा एंड बुद्धिज्म, रिसर्च वालूम –VIII नालंदा, 2002, पृष्ठ–302
16. तारानाथ, लामा, भारत में बौद्ध धर्म का इतिहास, अनु–रिंगजिन लुण्डुप लामा, पटना, 1971, पृष्ठ–39
17. त्रिपाठी, हवलदार, वही, पृष्ठ–217
18. श्रीवास्तव, ए.पी., वही, पृष्ठ–26
19. तारानाथ, वही, पृष्ठ–109
20. श्रीवास्तव, ए.पी., वही, पृष्ठ–27
21. संकालिया, वही, पृष्ठ–207
22. वही
23. ह्वी–ली, दी लाइफ ऑफ ह्वेनसांग, अनु. एस. बील, पृष्ठ–159–160
24. इत्सिंग, वही, पृष्ठ–177